अंक : १३०

अप्रैल - जून २०१५

कथाबिंब

कथाप्रधान त्रैमासिक पत्रिका

कहानियां

सुरभि बेहेरा • रूबी मोहंती • डॉ. दीप्ति पटनायक

डॉ. भगवती प्रसाद द्विवेदी • डॉ. शैलजा 'श्यामा'

आमने-सामने • जय प्रकाश त्रिपाठी

सागर-सीपी • यज्ञ शर्मा

१५ रुपये

अप्रैल-जून २०१५
(१९७९ से प्रकाशित)

कथाबिंब

कहानियां

अंतिम इच्छा - **सुरभि बेहेरा** ७
गुलाबी लिफ़ाफ़ा - **रूबी मोहंती** १३
धीरा मौसी - **डॉ. दीप्ति पटनायक** १९
बाट जोहते हुए - **डॉ. भगवती प्रसाद द्विवेदी** २५
मानवाधिकार - **डॉ. शैलजा "श्यामा"** २९

लघुकथाएं

उसकी पढ़ाई / **कुणाल शर्मा "अनजान"** १७
एक अकेला / **भवानी सिंह** ३६
क़ीमत / **अरविंद कुमार "मुकुल"** ४८

ग़ज़लें / गीत / कविताएं

ग़ज़लें / **मंजुला उपाध्याय "मंजुल"** १८
तुक्तक / **चंद्रमोहन प्रधान** २८
गीत / **जय प्रकाश त्रिपाठी** ३३
ग़ज़ल / **जय प्रकाश त्रिपाठी** ३५
ग़ज़ल / **डॉ. गोपाल "राजगोपाल"** ३६
कविता / **सुरेश "सौरभ"** ४७
गीत / **मदन देवड़ा** ४७

स्तंभ

"कुछ कही, कुछ अनकही" २
लेटर बॉक्स ४
"आमने-सामने" / **जय प्रकाश त्रिपाठी** ३१
"सागर-सीपी" / **यज्ञ शर्मा** ३७
"बाइस्कोप" **(सविता बजाज)** / **अनुराधा तिवारी** ४३
पुस्तक-समीक्षा ४५

प्रधान संपादक
डॉ. माधव सक्सेना "अरविंद"
संपादिका
मंजुश्री
संपादन सहयोग
जय प्रकाश त्रिपाठी
अश्विनी कुमार मिश्र
अशोक वशिष्ठ
हम्माद अहमद ख़ान

संपादन-संचालन पूर्णतः
अवैतनिक तथा अव्यवसायिक

●सदस्यता शुल्क●
आजीवन : ५०० रु., **त्रैवार्षिक** : १२५ रु.,
वार्षिक : ५० रु.,
(वार्षिक शुल्क ५ रु. के डाक टिकटों के रूप में भी स्वीकार्य है)
कृपया सदस्यता शुल्क मनीऑर्डर, डिमांड ड्राफ्ट द्वारा केवल **"कथाबिंब"** के नाम ही भेजें.

●रचनाएं व शुल्क भेजने का पता●
ए-१० बसेरा, ऑफ दिन-क्वारी रोड,
देवनार, मुंबई-४०० ०८८.
फोन : २५५१ ५५४१, ९८१९१६२६४८

e-mail : kathabimb@yahoo.com
www.kathabimb.com

● **न्यूयॉर्क संपर्क** ●
नरेश मित्तल
(M) 845-304-2414
नमित सक्सेना
(M) 347-514-4222
● **शिकागो संपर्क** ●
तूलिका सक्सेना
(M) 224-875-0738

एक प्रति का मूल्य : १५ रु.
कृपया नमूने की प्रति मंगाने हेतु १५ रु. के डाक टिकट अवश्य भेजें.
(सामान्य अंक : ४०-४४ पृष्ठ)

●**"कथाबिंब" अब फेसबुक पर भी** ●
facebook.com/kathabimb
आवरण पर नामित रचनाकारों से निवेदन है कि वे कृपया अपने नाम को "टैग" करें.

आवरण चित्र : डॉ. अरविंद
फ़्लैमिंगो पक्षी (सफ़ारी पार्क, सैन डियेगो, अमेरिका, जून '१५).

"कथाबिंब" मुंबई की "संस्कृति संरक्षण संस्था" के सौजन्य से प्रकाशित होती है.

कुछ कही, कुछ अनकही

यह संयोग ही है कि पिछले दो सालों की तरह इस बार भी गर्मियां अमेरिका में गुज़रीं. इस तरह क़रीब दो-ढाई महीने मुंबई से बाहर रहने पर सबसे अधिक व्यवधान *"कथाबिंब"* के प्रकाशन में आता है. सामान्यतया हमारी कोशिश रहती है कि प्रत्येक तिमाही के तीसरे माह के अंत तक पत्रिका पाठकों तक पहुंच जाये. इस वर्ष, जून-जुलाई के विदेश प्रवास के दौरान भी लगातार ई-मेल के माध्यम से प्रेस से संपर्क बना रहा और इस अंक के प्रकाशन में अतिरिक्त विलंब नहीं हुआ. संयुक्तांक निकालना संभवतः एक आसान विकल्प होता किंतु उन तमाम लेखकों और पाठकों के प्रति यह अन्याय होता जो हर अंक का बेसब्री से इंतज़ार करते रहते हैं. जुलाई अंत तक पाठक कथाबिंब की वेबसाइट पर इस अंक को देख-पढ़ पायेंगे और हमारी कोशिश रहेगी कि अगस्त के प्रथम सप्ताह में ग्राहकों/सदस्यों तक भी प्रतियां पहुंच जायें.

प्रवास के दौरान रोज़ ही टी. वी. न्यूज़ और दैनिक अख़बारों से भारत के सभी समाचार मिल जाते थे. संभवतः बहुत सारे मित्र लेखकों को श्रीमती गायत्री कमलेश्वर और मेरे रिश्ते के बारे में जानकारी है. क़रीब पिछले दो-तीन सालों से वे श्री दुष्यंत कुमार के सुपुत्र, अपने दामाद आलोक त्यागी के साथ मुंबई में रह रही थीं. ५ जुलाई २०१५ को रात में जब भारत में ६ जुलाई की सुबह हुई ही थी, एक फ़ोन आया. समाचार मिला कि बहन गायत्री जी का अचानक निधन होगया. हम सभी सकते में आ गये. उनकी तबियत ख़राब है यह जानकारी हमें थी. एक सप्ताह पहले उनसे फ़ोन पर बात हुई तब वे दिल्ली में थीं. ऐसा क़तई नहीं लग रहा था कि वे हमसे इतनी जल्दी विदा ले लेंगी. दिल हमेशा कचोटता रहेगा कि ऐसे दुर्दिन के समय हम पति-पत्नी विदेश में उनसे बहुत दूर थे.

●

अब इस अंक की कहानियों पर छुट-पुट -- अंक की पहली कहानी की लेखिका की मूल भाषा ओड़िया है. पिछले अंक में पाठक *"आमने-सामने"* स्तंभ में सुरभि बेहेरा से रूबरू हो चुके हैं. आप काफ़ी समय से हिंदी और ओड़िया दोनों भाषाओं में साहित्य-सृजन करती रही हैं. *"अंतिम इच्छा"* एक कमिटमेंट की कहानी है जो एक मित्र दूसरे से करता है. मित्र की अंतिम इच्छा के रूप में उदय बिना किसी उहापोह के, न ही केवल मित्र की पत्नी का हाथ थामता है बल्कि मित्र के पुत्र को भी एक पिता का प्यार देता है. दूसरी कहानी की लेखिका रूबी मोहंती भी ओड़िया भाषी हैं. अपनी कहानी *"गुलाबी लिफ़ाफ़ा"* में बहुत ही सीधे-सादे ट्रीटमेंट के माध्यम से वे यह उजागर करती हैं कि भारतीय गृहणियां परिवार को ख़ुशहाल बनाने में स्वयं को खपा देती हैं, यहां तक कि बहुधा अपने स्वास्थ्य की ओर भी ध्यान नहीं देतीं. यह संयोग ही है कि अंक की तीसरी लेखिका डॉ. दीप्ति पटनायक भी ओड़िया भाषी हैं. इस तरह यह अंक शायद "ओड़िया-अंक" भी कहा जा सकता है. "धीरा मौसी" कहानी का अनुवाद मधुसूदन साहा ने मूल ओड़िया से किया है. साहा जी से फ़ोन पर बात होने पर सुखद आश्चर्य हुआ कि आप सुरभि बेहेरा के पिताश्री हैं और "कथाबिंब" से काफ़ी अरसे से परिचित हैं. वैसे तो धीरा मौसी का नाम सुधीरा था लेकिन वे धीर गंभीर नहीं थीं. चार बच्चों की मां ने पति के निधन के बाद केवल अपने परिवार को ही नहीं संभाला बल्कि हर जान-पहचान वाले की हमेशा मदद करती रहीं. किंतु उनका ऐसा व्यवहार परिवार के सदस्यों को कभी रास नहीं आया. भारतीय परिप्रेक्ष्य में विधवाएं किन परिस्थितियों में जीती हैं यह सर्वविदित है. अपनी कहानी *"बाट जोहते हुए"* में डॉ. भगवती प्रसाद द्विवेदी ने भारतीय समाज की ऐसी स्त्रियों का चित्रण किया है जो मानती हैं कि एक बार वरण करने के बाद सात जन्म तक पति से बंधन नहीं छूटता. किसी कारण से यदि इस जन्म में पति का साथ नहीं मिल पाया तो अगले जन्म की बाट जोहते हुए ज़िंदगी गुज़ारना स्वीकार कर लेती हैं, चाहे विवशता वश ही क्यों न! अंक की अंतिम कहानी *"मानवाधिकार"* सर्वथा एक नयी लेखिका डॉ. शैलजा "श्यामा" की रचना है. बहुत ही सूक्ष्मता से लेखिका ने ऐसे पत्रकारों के चेहरों से नकाब उतारा है जो पत्रकारिता को "व्यापार" से अधिक कुछ नहीं समझते. हर छोटी-बड़ी दुर्घटना उनके लिए मात्र एक "अवसर" होता है.

●

स्वतंत्रता के बाद कई बार ऐसे अवसर आये जब भारतवर्ष संपन्नता और समृद्धि की राह पर तेज़ी से आगे बढ़ सकता था किंतु कतिपय विपरीत कारणों से ऐसा संभव नहीं हो सका. पं. नेहरू के निधन के पश्चात श्री लाल बहादुर शास्त्री के रूप में देश ने सर्वथा अलग विचारों वाला प्रधानमंत्री पाया. "जय जवान, जय किसान" नारे ने भारतीयों में एक नयी चेतना का संचार किया. शास्त्री जी के आव्हान पर देश हित में सहर्ष अनेक लोगों ने सप्ताह में एक दिन भोजन करना त्याग दिया. "हरित क्रांति" का सूत्रपात भी तब ही हुआ था. ताशकंद में उनकी मृत्यु कैसे हुई इस पर आज तक पर्दा पड़ा हुआ है. शास्त्री जी के बाद देश की बागडोर श्रीमती इंदिरा गांधी ने संभाली. १९७१ में पाकिस्तान की लड़ाई में भारत ने विजय प्राप्त की और बंग्लादेश बनने में मदद की. अटल बिहारी बाजपेयी जी ने इंदिरा गांधी की तुलना दुर्गा जी से की थी किंतु शीघ्र ही जनता का कॉन्ग्रेस से मोहभंग हो गया. तत्पश्चात श्री जयप्रकाश जी के नेतृत्व में सारा विपक्ष एकजुट हुआ. साथ

ही चुनाव-प्रचार में ग़लत तरीकों के इस्तेमाल का इलाहाबाद उच्च न्यायालय में चल रहा एक मुकदमा इंदिरा गांधी हार गयीं. २५ जून १९७५ को इमरज़ेन्सी लगी. तबसे यदि इंदिरा गांधी की हत्या और दिल्ली के दंगों के बाद सत्ता में आयी राजीव गांधी की सरकार को छोड़ दें तो बहुमत के अभाव में ४० साल तक सरकारें बनती-बिगड़ती रहीं. यहां इस सबका उल्लेख करने का तात्पर्य मात्र इतना ही कि जब तक हम इतिहास पर दृष्टिपात नहीं करेंगे, अतीत की ख़ामियों को अच्छी तरह नहीं समझेंगे, अपने वर्तमान में अपेक्षित बदलाव नहीं ला पायेंगे और यदि कुछ नया हो रहा है तो उसका अहसास भी हमें नहीं हो पायेगा. तमाम विवादों से घिरे होने के बावजूद व विरोधियों द्वारा नकारात्मक प्रचार के बाद भी भारतीय जनता ने पिछले वर्ष आम चुनावों में राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के प्रचारक तथा "मौत के सौदागर" नरेंद्र मोदी को एक अभूतपूर्व बहुमत से जिताया. पिछले ३० वर्षों में ऐसा पहली बार हुआ कि किसी एक दल या गठबंधन को इस प्रकार का जनादेश मिला हो. कॉन्ग्रेस व अन्य कुछ दो-तीन विरोधी दलों को छोड़ कर अनेक दल दस की संख्या भी पार नहीं कर सके. आज का वोटर जिसमें ७० प्रतिशत युवा हैं "कम्युलिज़्म" और "सेकुलरिज़्म" के झमेले में नहीं पड़ना चाहता. संचार क्रांति के इस युग में सारा विश्व उसकी हथेली में एक स्मार्ट फ़ोन आ जाने के कारण सिमटकर रह गया है. वह भारत में भी वे सभी सुविधाएं चाहता है जो संसार के किसी भी विकसित देश में मौजूद हैं. इस वास्तविकता को सभी राजनीतिक दलों को समझना होगा और अपनी नीतियों में "कोर्स करेक्शन" करना होगा. बीसवीं सदी के राजनीतिक समीकरणों और जोड़-तोड़ का आधार लेकर आप इक्कीसवीं सदी की लड़ाई नहीं जीत सकते.

आज देश एक बहुत ही सकारात्मक दौर से गुज़र रहा है. नरेंद्र मोदी की सरकार एक सोचे-समझे रोडमैप पर चल रही है. पहले वर्ष में प्रधानमंत्री द्वारा की अनेक विदेश यात्राओं से पूरे विश्व में भारत की साख बढ़ी है. न जाने कितने देश आज भारत में परियोजनाएं लगाने और धन निवेश करने के लिए तत्पर हैं. देश के किसी भी भाग में २४ घंटे बिजली उपलब्ध हो इस हेतु कारगर योजनाएं शुरू हुई हैं. महामार्गों के निर्माण में तेज़ी आयी है. इन्हें विश्व स्तर का बनाने का प्लान तैयार है लाखों स्थानीय लोगों को इससे रोज़गार मिलेगा. हमारा उद्देश्य मोदी सरकार की उपलब्धियां गिनाना या प्रधानमंत्री की विरुदावली गाना नहीं है. यह माना कि साहित्यकार का स्वर विरोधी होना चाहिए किंतु महज विरोध के लिए विरोध करना भी किसी का ध्येय नहीं होना चाहिए. हिंदी को राष्ट्रभाषा का दर्जा दिलाने के लिए असंख्य लोगों ने अपना जीवन अर्पण कर दिया. हिंदी के प्रचार-प्रसार के लिए अनेक समितियां बनीं. सभी सरकारी विभागों में हिंदी विभाग है. प्रतिवर्ष १४ सितंबर "हिंदी-दिवस" ज़ोर-शोर से मनाया जाता है. लेकिन उसके बाद केवल खानापूरी! गुजराती भाषी होने के बाबजूद नरेंद्र मोदी अपने संभाषणों में, देश हो या विदेश, बहुत ही सहज-सरल हिंदी का ही प्रयोग करते हैं. उनके इस एक क़दम ने स्वमेव हिंदी को राष्ट्रभाषा का दर्जा प्रदान कर दिया है साथ ही हिंदी को अपेक्षित गरिमा मिली है. अभी २१ जून को भारत समेत १७७ देशों में अंतर्राष्ट्रीय योग दिवस मनाया गया. २७ सितंबर २०१४ को संयुक्त राष्ट्र की असेंबली में अपने संबोधन ने श्री मोदी ने प्रति वर्ष इस तरह के आयोजन का सुझाव दिया था, जिसे असेंबली ने ११ दिसंबर को सर्वसम्मति से पारित किया. भौगोलिक दृष्टि से २१ जून का विशिष्ट महत्व होता है. उत्तरी गोलार्ध में यह सबसे बड़ा दिन होता है और पृथ्वी दक्षिणायन का रुख करती है. दिल्ली में ८४ देशों के प्रतिनिधियों के साथ राजपथ पर ३५,९८५ लोगों ने एक साथ ३५ मिनट तक योगाभ्यास किया. प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी सबसे आगे प्रथम पंक्ति में थे और अन्य प्रतिभागियों की तरह योगाभ्यास कर रहे थे. इस कार्यक्रम को हमने अमरीका में देखा. अमेरिका में भी अनेक शहरों में योगाभ्यास के कार्यक्रम आयोजित किये गये.

वर्षों तक राजनीतिक उठा-पटक के चलते देश की अनेक समस्याओं की अनदेखी होती रही. वर्तमान सरकार की अपनी प्राथमिकताएं हो सकती हैं. आज इंटरनेट के माध्यम से आम नागरिक अपने सुझाव सरकार को भेज सकते हैं. ●

अंत में, चलते-चलते! अमेरिका में सारा यातायात हवाई ज़हाज से होता है या सड़कों द्वारा. इस प्रवास में मुझे भी कार ड्राइव करने का काफ़ी अवसर मिला. सड़कों का पूर्व से पश्चिम और उत्तर से दक्षिण का एक विशाल नेटवर्क है, लेकिन अनुपात में सड़क दुर्घटनाएं नगण्य होती हैं. इसका कारण वाहन-चालन नियमों का सख़्ती से पालन किया जाना है. यदि कोई व्यक्ति लाइसेन्स लेना चाहता है तो कार्यालय उसे नियमों की एक पुस्तिका देता है जिसके आधार पर एक लिखित परीक्षा देनी होती है. उसमें पास होने के बाद ड्राइविंग टेस्ट जो काफ़ी मुश्किल होता है, पास होने पर ही लाइसेन्स मिलता है. सड़कों पर जगह-जगह **"स्टॉप"** और गति सीमा के बोर्ड लगे होते हैं. एक अन्य मूल-मंत्र है **"राइट ऑफ़ वे." यानी, चौराहे पर जो वाहन पहले आया** वह पहले जायेगा. कोई भी लेन तोड़ कर दूसरी गाड़ी को ओवरटेक नहीं कर सकता. किसी से ज़रा ग़लती हुई नहीं कि **"कॉप"** मौजूद. यदि हम सड़क दुर्घटनाएं कम करना चाहते हैं तो हमें भी नियम पालन की दिशा में सख़्ती लानी होगी.

अरविंद

लेटर-बॉक्स

▸▸ 'कथाबिंब' का जनवरी-मार्च २०१५ अंक मिला. पढ़ने की शुरुआत किसी कहानी, कविता, ग़ज़ल से नहीं की बल्कि कुशेश्वर जी के समालोचनात्मक कई पृष्ठों के पत्र से जो 'कथाबिंब' के अक्तूबर-दिसंबर अंक पर केंद्रित है. यह धैर्यपूर्ण पाठ और तार्किक आलोचना का एक अच्छा और ज़रूरी उपक्रम है. आप असहमतियों के स्वर को भी जगह देते हैं यह अच्छी बात है.

जहां तक जनवरी-मार्च २०१५ के अंक की बात है इसकी कहानियों से इस बार कुशेश्वर जी को कोई शिकायत नहीं होगी, ऐसा मैं समझता हूं. संतोष परिहार की कहानी 'अंतिम पड़ाव पर' यथार्थवादी और पठनीय है जो सामाजिक विसंगतियों को मार्मिकता से रखती है. पीयूष द्विवेदी की कहानी 'पाखंडी' आज के दौर का एक प्रेम आख्यान है जिसमें आंदोलन और उद्यत यौवन प्रेम का अफ़सोसनाक अंत है. घर और परिवार की संवेदनाओं और संघर्षों की व्यथा-कथा कहती मदन मोहन प्रसाद की कहानी 'लीक', विक्रम सिंह की कहानी 'पॉवर, पैसा और परिवार' और रविशंकर की कहानी 'जीवन खेल तमाशा' भी पठनीय हैं. रविशंकर सिंह की कहानी में पिता जो चार जमात पढ़े हैं उनका डिप्लोमा इन फ़ार्मेसी में डिग्री प्राप्त करना तथ्यात्मक त्रुटि है या नहीं इस पर मैं कन्फ़र्म नहीं हूं. कुशेश्वर जी बतायेंगे. अशोक अंजुम की ग़ज़ल सशक्त रही.

- *केशव शरण*

एम, २/५६४, सिकरौल, वाराणसी-२२१००२.

▸▸ 'कथाबिंब' का जनवरी-मार्च '१५ अंक मिला. कहानियों के चयन में आप एवं मंजुश्री जी का चयन-कौशल साफ़ झलकता है. प्रसन्नता इस बात की है कि 'कथाबिंब' केवल नामचीन कथाकारों की कहानियों को ही अपने पृष्ठों पर जगह नहीं देती, अपितु नये और अल्प ज्ञात कथाकारों को भी समुचित अवसर देने की चिंता करती है. इसी का सुपरिणाम है कि पत्रिका के हर अंक की कहानियों में ताज़गी और नयापन देखने को मिलता है. यह सच है कि अधिकतर साहित्यिक पत्रिकाओं में स्थापित लेखकों की रचनाओं का इतना वर्चस्व रहता है कि नयों को मौक़ा ही नहीं मिलता. कृपया ऐसी ही नीति बनाये रखें.

समाज के अंतिम छोर पर खड़े समुदाय की व्यथा कथा को आधार बनाकर कहानी 'अंतिम पड़ाव पर' लिखी गयी है. कथावस्तु नि:संदेह अछूती है और मन को स्पर्श करती है. कथाकार ने कहानी में चमत्कार पैदा करने के लिए पार्थिव देह के साथ आयी सामग्री को एक व्यक्ति द्वारा चिता में जला दिये जाने का जिक्र किया है, जिनमें मृतक के साथ आये कपड़े भी शामिल थे. हिंदू मान्यता के अनुसार शव के साथ न्यूनतम कपड़े, जो शरीर को ढके रहते हैं, चिता में जलाये जाते हैं. उनके अलावा कपड़े आदि जलाना वर्जित रहता है. आश्चर्य है कि एक व्यक्ति ने कपाल क्रिया के बाद ढेर सारे कपड़े चिता में जला दिये, लेकिन उसका किसी ने तनिक भी विरोध नहीं किया. क्या हिंदू मान्यताएं इतनी कमज़ोर हैं? यदि कहानी में उस व्यक्ति की नासमझी/हेकड़ी का विरोध भी दर्शाया जाता, तो कहानी अधिक सशक्त बनती. चमत्कार के लिए यथार्थ की अनदेखी ठीक नहीं है.

- *युगेश शर्मा*

११ सौम्या एन्क्लेव एक्सटेंशन, सियाराम कॉलोनी, चुनाभट्टी, भोपाल-४६२०१६.

▸▸ 'कथाबिंब' का जनवरी-मार्च २०१५ अंक प्राप्त हुआ. सबसे पहले तो आपको 'कमलेश्वर स्मृति कथा पुरस्कार-२०१४' के लिए बधाई एवं साधुवाद. निश्चित ही सर्वश्रेष्ठ कहानी, श्रेष्ठ कहानी और उत्तम कहानी का चयन विभिन्न प्रकार के ख़ूबसूरत फूलों में से उसकी ख़ुशबू का अर्क निकालने जैसा था जो आपने कर दिखाया. दरअसल, इस बेहद श्रमसाध्य एवं कठिन काम के पीछे संपादक मंडल विशेषकर अरविंद जी एवं मंजुश्री जी की 'कथाबिंब' के प्रति सतत लगन व समर्पण की भावना रही है.

किसी भी पत्रिका को जनग्राह्य बनाने में संपादक की जन–सापेक्ष सोच और नज़रिया होना बहुत ज़रूरी है. अपने

समय, समाज और सच्चाई को पकड़ने का बुद्धि कौशल अगर संपादक के पास नहीं है तो वह वक़्त की नब्ज को पहचान नहीं पायेगा. इसी संदर्भ में 'मत-मतांतर' में कुशेश्वर जी ने बिलकुल ठीक ही लिखा है... 'देखा जाये तो साहित्यिक रचनात्मक दृष्टि लाने के लिए रचनाकार और संपादक दोनों को मेहनत, मशक्कत, धैर्य और चिंताधारा की तलवारों की धार पर से गुज़रना पड़ता है, जिनका इन दिनों काफ़ी अभाव है. हिंदी साहित्य के लिए यह एक दु:खद समय है.'

आपकी संपादकीय क्षमता और परिपक्वता की वजह से ही अंक की पहली कहानी 'अंतिम पड़ाव पर' (संतोष परिहार) को ही आना चाहिए था. मुर्दा लाशों के बीच अपनी जिजीविषा तलाश करती बच्ची छबीली का यह दर्द देश के उन लाखों बच्चों का दर्द बन चुका है जो मुर्दाघरों-श्मशानों और नदी-तलाबों के किनारे दो जून की रोटी के लिए अपने पेट की अंतड़ियों के ताप से जल रहे हैं. लेखक संतोष परिहार इन शब्दों में कहानी के दर्द को उभारने में सफल कहे जा सकते हैं कि, '...कहते हैं कि आदमी भूत बनकर सताता है. मगर छबीली कितने समय से मुर्दों का सामान उठा रही थी, मजाल है कि किसी मुर्दे ने उसे सताया हो. उसकी आत्मा तो आज ज़िंदा लोगों ने दुखायी थी'. संपादक की समय सापेक्ष दृष्टि की तरह ही ऐसी यथार्थवादी कहानियों का स्वागत व्यापक पाठक वर्ग में भी होना चाहिए.

अंक की कुल पांच कहानियों में विक्रम सिंह की विदेश की नायिका मंजु और 'पॉवर, पैसा और परिवार' की नायिका मंजु, विदेश की नायिका और अपने कमाऊ पति से क़द में कहीं ऊंची साबित होती है, जब वह यह कहती है कि,'मैं आस्ट्रेलिया नहीं जाऊंगी. आप तो बूढ़े मां-बाप को छोड़कर चले गये. यदि मैं भी चली गयी तो इन्हें कौन देखेगा?' परिवार के प्रति समर्पण ही उसे अन्य औरतों से अलग करता हैं. वास्तव में किचन में रात के १० बजे तक बर्तन मांजने की आवाज़ अपनेपन और श्रद्धा के साथ जिस घर में गूंजती है उसी घर में स्वर्ग भी बसता है. ईश्वर, आज के इस स्वार्थी और आपाधापी के युग में ऐसी बहू हर घर में दे. मदन मोहन प्रसाद की 'लीक', रविशंकर सिंह की 'जीवन खेल-तमाशा' बस ठीक-ठाक ही लगीं. अंक की सबसे स्तरहीन और बकवास कहानी में पीयूष द्विवेदी जी की 'पाखंडी' को रखा जा सकता है. पर यह बात समझ से परे है कि ऐसी बेकार और बेसिर-पैर की कहानी को दूसरे पायदान पर क्यों रखा गया?

लघुकथाओं में श्याम कुमार राई की 'हमारा अच्छा बेटा', सुनील गज्जाणी की 'बारिश का बोझ' अच्छी बन पड़ी हैं, जबकि कविताओं और ग़ज़लों में राम कुमार पटेल 'यार,' अशोक अंजुम की ग़ज़लें और दयाशंकर सुबोध, डॉक्टर प्रभा मुजुमदार, प्रोफेसर मृत्युंजय उपाध्याय की कविताएं ध्यानाकर्षण करती हैं.

हमेशा की तरह 'कुछ कही, कुछ अनकही' में, अरविंद जी ने समसामयिक मुद्दों पर समीक्षात्मक टिप्पणियां की हैं जो बिलकुल सटीक हैं. 'आईने में उतरते हुए प्रतिबिंब' (आमने-सामने) में यदि आप लेखकों की उपलब्धियों की बजाये उनके संघर्ष को रेखांकित करें तो यह कॉलम सारिका के 'गर्दिश के दिन' की तरह लेखकों और पाठकों को बहुत कुछ दे सकता है. 'सागर-सीपी' में डॉक्टर श्याम निर्मोही से डॉक्टर राजेश हजेला की विशेष बातचीत हमेशा की तरह सारगर्भित है. 'बाइस्कोप' में सविता बजाज ने इब्राहिम अल्काज़ी के व्यक्तित्व के कुछ छुपे रहस्यों को उजागर करके जिज्ञासु पाठकों पर उपकार ही किया है.

'कथाबिंब' का सबसे सार्थक पहलू यह है कि इसमें 'पुस्तक समीक्षा' के तहत वर्तमान साहित्य पर समसामयिक विषयों की समीक्षा विभिन्न विद्वान समालोचकों से कराकर उसे पाठकों के सम्मुख रखते हैं. 'शिखर एवं जलेस' के तत्वाधान में फ़र्रूखाबाद में अरविंद जी की मौज़ूदगी दरअसल देश भर में फैले 'कथाबिंब' के सुधी पाठकों में एक उपलब्धि की तरह है.

– ***विक्रम जनबंधु,***
संपादक - प्रेस पुलिस लहर (पाक्षिक),
क्वार्टर १७ए,-सड़क एवेन्यू, बी-सेक्टर-१,
भिलाईनगर-४९०००१(छ.ग.)

▸▸ 'कथाबिंब' का जनवरी-मार्च अंक मिला. हर बार की तरह अंक संग्रहणीय रहा. कहानियां सब अच्छी